International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 71-75

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 71-75
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 20-02-2022
Accepted: 25-04-2022

डॉ. विवेक शर्मा
गाँव मसौली, तह. जोगिन्द्र नगर
जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विवेक शर्मा
गाँव मसौली, तह. जोगिन्द्र नगर
जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश, भारत

देवता शब्द का परिचय

डॉ. विवेक शर्मा

प्रस्तावना

संस्कृतवाङ्मय में प्राकृतिक शक्तियों को ही देवता माना गया है। उन्हें मानवीय शरीर, रूप, रंग, गुण–धर्म, वस्त्राभूषण, वाहन एवं शस्त्र धारण करते हुए बतलाया गया है। मनुष्यों के समान खान–पान, युद्ध तथा अन्य क्रियाएँ ये करते हुए वर्णित हैं। ये देवता किसी जाति, समुदाय या धर्म की अपेक्षा प्राकृतिक–दृश्यों के अधिक निकट होने के कारण प्राकृतिक हैं। अपने सम्मुख वर्तमान प्राकृतिक शक्तियों और दृश्यों को ऋषियों ने देखा तथा देवरूप में उनका वर्णन किया।[1] ऋग्देव में तो देवताओं का ही प्रमुख रूप से वर्णन हुआ है।[2] प्रत्येक सूक्त का एक अपना देवता है जिसमें उस देवता की स्तुति की गई है।[3] वैदिक देवताओं के प्राकृतिक आधारों में, आरम्भ में बहुत ही थोड़ी वैयक्तिक विशेषताएँ रही थी, यहाँ तक कि उनमें उनके अपने क्षेत्र से सम्बद्ध अन्य दृश्यों अथवा घटनाओं की विशेषताएँ भी विद्यमान थीं। इस प्रकार उषा, सूर्य एवं अग्नि के इन सब में मिल जाने वाले गुण हैं– ज्योतिष्मत्ता, अन्धकार का निरसन और प्रातः काल के समय आविर्भाव।[4] ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार देवता वह शक्ति होती है जो मनुष्य को दान में कुछ देती है, स्वयं में दीप्त है तथा अन्य वस्तुओं को प्रकाशित अथवा द्योतित करती है। देवों के उत्पन्न होने पर दिन हुआ, यही देवों का देवत्व है।[5] द्युलोक को देवों का आयतन (गृह) कहा गया है।[6] ब्राह्मण–साहित्य के अनुसार देवों की उत्पत्ति प्रजापति के मुख से हुई। षड्विंश–ब्राह्मण देवों की दिन से उत्पत्ति हुई तथा असुरों की उत्पत्ति रात्रि से हुई ऐसा मानता है।[7] शतपथ–ब्राह्मण में भी देवों की उत्पत्ति दिन से मानी गई है।[8] वैदिक देवताओं के चरित्र प्रायः नैतिक और निर्दोष हैं। इनके दीर्घकाल तक जीवित रहने का रहस्य भी नैतिकता ही है। नैतिकता का यह ऊँचा स्तर वैदिक सभ्यता की प्राचीनता की ओर संकेत करता है। केवल देवताओं के ज्ञान से ही ऋषियों को सन्तोष नहीं हुआ। उनमें सृष्टि के उपादान कारण को जानने की इच्छा भी हुई।

दार्शनिक सूक्तों में देवों की उत्पत्ति, बहुधा जल से बताई गई है। अथर्ववेद में उनका उद्भव असत् से माना गया है।[9] ऋग्वेद के अनुसार देवों का उत्थान विश्व की उत्पत्ति के अनन्तर हुआ है।[10] ऋग्वेद में उनका उद्गम संसार के तीन विभागों के अनुसारी तीन तत्वों से अर्थात् अदिति, जल और पृथिवी से बताया गया है।[11] एक धारणा के अनुसार देवता एक–दूसरे से उत्पन्न हुए। एक स्थल पर उषा से[12] एक स्थल पर ब्रह्मएक स्थल पर ब्रह्मणस्पति से[13] तथा एक स्थल पर सोम से[14] देवताओं की उत्पत्ति कही गई है। अथर्ववेद में कुछ देवता पिता तथा कुछ पुत्र माने गए हैं।[15]

रामायण के अनुसार अदिति देवताओं की माता है।[16] प्रजापति कश्यप का विवाह प्रजापति दक्ष की आठ कन्याओं के साथ हुआ जिनमें दो के नाम अदिति तथा दिति थे। अदिति से तेंतीस देवता तथा दिति से दैत्य उत्पन्न हुए।[17] देवों तथा दैत्यों ने अमृत प्राप्ति के लिए वासुकि नाग को डोरी तथा मन्दराचल पर्वत को मन्थनदण्ड बनाकर क्षीर–सागर का मन्थन किया। इससे सर्वप्रथम विष उत्पन्न हुआ जिसे भगवान् शिव ने ग्रहण किया। तत्पश्चात् विष्णु ने कच्छप (कच्छुए) का रूप धारण करके मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया। इसके उपरान्त हजारों वर्ष मन्थन करने पर क्रमशः आयुर्वेद के आचार्य धन्वन्तरि, अप्सराएँ, परिचारिकाएँ, वारुणी, उच्चैः श्रवा नामक अश्व, कौस्तुभमणि तथा अमृत निकला। वारुणी अर्थात् सुरा ग्रहण करने के कारण अदिति के पुत्र सुर कहलाए तथा दिति के पुत्र न ग्रहण करने के कारण असुर।[18] अमृत–प्राप्ति के लिए देवों तथा दैत्यों में घोर संग्राम हुआ।[19] विष्णु ने अमृत छिनकर मोहिनी रूप धारण किया और अमृत देवों को पिला दिया, जिससे वे अमर हो गए।[20] इसके बाद दैत्य युद्ध में मारे गए और स्वर्ग पर देवताओं का राज्य हो गया जिसके राजा इन्द्र बनें।[21]

देवता शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ तथा परिभाषा

देवता शब्द दिव् धातु से निष्पन्न हुआ है उसके क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति एवं गति ये दस अर्थ हैं।[22] इनमें से क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, निद्रा एवं मद ये पाँच

अर्थ परमात्मा के भौतिक स्वरूप अर्थात् 33 देवताओं में पाये जाते हैं और द्युति, स्तुति, कान्ति, मोद तथा गति ये परमात्मा के ही प्रमुख गुण हैं।[23] अतः देवता शब्द का मुख्य अर्थ परमात्मा ही है, उसमें अनन्त गुण हैं। गौण रूप से पृथक्–पृथक् एक या दो गुण जिन–जिन तत्त्वों में व्यक्त होते हैं उनको भी देवता कह दिया है। दिव् धातु के मुख्य अर्थ 'प्रकाश करना' से भी परमात्मा का ही बोध होता है। 'देव' द्युतिश्च तनोति इति देवता। देवता वह कहलाता है जो द्युति का विस्तार करता है, यह शब्द प्रकाश ज्ञान बोध अथवा सृष्टि का द्योतक है।[24] यास्काचार्य ने देव की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है– 'देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद् वा' अर्थात पदार्थों को देने वाले, प्रकाशित होने वाले अथवा प्रकाशित करने वाले जो देव हैं वही देवता हैं।[25] सामान्यतः इस शब्द का अर्थ स्वर्ग से सम्बद्ध प्राणी समझा जाता है[26] लेकिन यास्क के निर्वचन के अनुसार दान और प्रकाश देने वाले सभी देव हैं। इसलिए साहित्य में देव का प्रयोग माता–पिता–गुरुजन, [27] विद्वान्,[28] इन्द्रिय, [29] प्राण, [30] ऋषि, [31] राजा, [32] तथा दानव[33] आदि के लिए भी किया गया है।

वेदान्तसार में 'ब्रह्म' शब्द को देवता का समानार्थक माना है। ब्रह्म शब्द का तात्पर्य है– एकमात्र नित्य चेतन सत्ता जो जगत् का कारण और सत्, चित् आनन्दस्वरूप है।[34]

'अखण्डं सच्चिदानन्दमवांङ्मनसगोचरम्।
आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये।।' [35]

ऐतरेय ब्राह्मण में देवों को इन्द्रिय स्थानीय माना गया है, अग्नि, वायु, आदित्य, दिशाओं, वनस्पतियों, चन्द्रमा, मृत्यु तथा जल को देवता माना है और उनको वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, लोभ, मन, अपान के रूप में शरीर के अंगों में रहने वाला बताया है।[36] वैदिक देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक और मनुष्य की तरह रूप वाले माने गए हैं। वैदिक ऋषियों ने उनकी इन शक्तियों से प्रभावित होकर उनकी ऋचाएँ रची, जो सम्पूर्ण प्रकृति को एक सजीव उपस्थिति या प्राणयुक्त वास्तविक अस्तित्वों के पुंज के रूप में देखती हैं। प्राण, आदित्य तथा अन्न को भी देवता कहा गया है, स्वरों और समयांशों को देव नाम से सम्बोधित किया गया है।[37]

आर्यों के धर्म में सृष्टि की रचना एवं विश्व के संचालन के लिए ईश्वर, जीव एवं प्रकृति इन तीन तत्त्वों की सत्ता स्वीकार की गई। जीव और प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा ईश्वर इनका नियामक और संचालक है। प्रकृति के द्वारा जीव बंधा रहता है तथा जन्म–मरण के चक्र में पड़ा रहता है। तत्त्वज्ञान होने से वह इन बन्धनों से छूट जाता है और मोक्ष के परम आनन्द को प्राप्त करता है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में इस त्रैतवाद को पुष्ट किया गया है–

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।'[38]

सुन्दर पंखों वाले समान आयु वाले दो पक्षी मित्र समान रूप से वृक्ष का आलिंगन कर रहे हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट पिप्पल का आस्वादन कर रहा है। दूसरा भोग न करता हुआ भी आनन्द प्राप्त करता है। इसमें विश्व प्रकृति है तथा पिप्पल उसके भोग पदार्थ हैं। आस्वादन करने वाला पक्षी जीव है और भोग न करने वाला दूसरा पक्षी ईश्वर है। 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।।'[39] यहाँ विष्णु परमात्मा के लिए 'सूरयः' जीवों के लिए और 'दिवीव चक्षुः' प्रकृति रूप सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

वैदिक साहित्य में देवताओं के विविध रूपों का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त का अपना एक देवता है, जिसमें उसकी स्तुति की गई है। जिसका उस मन्त्र में वर्णन किया गया है उसे ही श्रेष्ठ माना गया है।[40] इनका विकास अमृत से होता है इसलिए ये अमर है।[41] अथर्ववेद में जीवों आदि में पाई जाने वाली दिव्य–शक्ति ही देवता कहलाती है।[42] देवता राष्ट्र की रक्षा और पालन करते हैं, वे राष्ट्र की उन्नति करते हैं, ये सूर्य के रूप में राजा की तरह सब तरह से मदद करते हैं।[43] उन्होंने इस पृथ्वी को शान्ति प्रदान की है[44] तथा वे जो कुछ भी करते हैं वह मनुष्य के कल्याण के लिए होता है।[45] वैदिक काल में प्राकृतिक–शक्तियों एवं वस्तुओं की देवताओं के रूप में पूजा–अर्चना की जाती थी। इनके अतिरिक्त श्रद्धा, प्रजापति आदि भावात्मक देवताओं का भी समाज में काफी प्रचलन था। वेदों में देवताओं का मानवीय स्वरूप वर्णित है। वे चरित्रवान्, द्युतिमान्, दयालु, सत्यवादी, निश्छल, उदार, पवित्र, मानव–हितकारी एवं बुद्धिमान् के रूप में उभारे गए हैं। इनकी अपार शक्ति से ही संसार संसरणशील माना गया है। वैदिककालीन देवताओं में सबसे प्रमुख स्थान इन्द्र का है। इन्द्र के लिए 250 सूक्त, अग्नि से सम्बन्धित 200 और वरुण से 120 सम्बन्धित सूक्त हैं। अन्य देवताओं का वर्णन इनसे कम प्राप्त होता है।

''जाकी रही भावना जैसी तिन देखी प्रभु मूरत तैसी'' यह कहावत बिल्कुल यथार्थ है। देवताओं को अनुभवकर्त्ता का हृदय अपने–अपने अनुसार व्याख्यायित करता है, इसलिए इन्हें विभिन्न आकार या विविध नाम दिए गए हैं। कुछ इसे निराकार मानते हैं, कुछ साकार, कुछ दोनों, कुछ इसे अपना अभिन्न स्वरूप मानते हैं। इसलिए इस विषय को थोड़ा–सा प्रकाशित किया जा रहा है। इस विषय में यास्क ने निरुक्त में प्रकाश डालते हुए इन्हें वेदों के उदाहरण के अनुसार पुरुषविध, अपुरुषविध तथा उभयविध माना है;[46] परन्तु अन्त में उन्होंने भी अनेकदेवतावाद को भावनात्मक मानते हुए अद्वैतवाद को ही पुष्ट करते हुए कहा–

'महाभाग्याद् देवतायाः एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।'[47]

वेदों में केवल एक ही निर्गुण ब्रह्म को मान्यता देते हुए अज्ञान की भी उपाधि के कारण अनेक देवों का विवरण उपलब्ध होता है। विभिन्न मान्यताओं के कारण देवों की संख्या भी अनेक मानी गई।

अनेकदेवतावाद

वेद में देवताओं की संख्या के विषय में मतैक्य नहीं है। इस विषय में प्रत्येक वेद का अपना–अपना मत है। ऋग्वेद के सूक्तों में भी इस तरह की भिन्नता देखी जा सकती है। उसके एक सूक्त में देवताओं की संख्या 33 (तेंतीस) बताई गई है। इनमें एक मन्त्र में कहा है– 'यज्ञ के उपभोक्ता 11 द्यु, 11 अन्तरिक्ष एवं 11 पृथिवी स्थानीय देव हैं।'[48] ऋग्वेद में एक जगह पर 34 देवताओं का वर्णन मिलता है। यहाँ पर 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, एक प्रजापति, एक वषट्कार और एक विराट् इस प्रकार 34 देवता माने हैं।[49] ऋग्वेद में एक मण्डल में इनकी संख्या 3339 कही है।[50] इस तरह इसमें बहुदेवतावाद की प्रधानता देते हुए संख्या की विभिन्नता दिखाई देती है।

अथर्ववेद में भी देवताओं की संख्या को लेकर अनेक मत हैं। इसमें आरम्भ में देवों की संख्या दस मानी गई है।[51] वे प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी और मन नामक हैं।[52] एक स्थल पर अथर्ववेद में देवों की संख्या 33 बताई गई है। अथर्ववेद में देवताओं की संख्या संक्षिप्त और विस्तृत रूप में इस प्रकार बतायी है– देवता 33, 300 और 6000 अर्थात् संक्षिप्त रूप में देवता तेंतीस हैं। वे ही अपनी विभूतियों से विस्तृत होकर तीन सौ और छह हजार हो जाते हैं।[53] ऐतरेय–ब्राह्मण में भी 33 देवता माने गए हैं। याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यक उपनिषद् में 33 देवता माने हैं। इनमं 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य तथा 1 इन्द्र, 1 प्रजापति है।[54] तैत्तिरीय–संहिता में भी 11 देवताओं को आकाश में, 11 को पृथ्वी पर और 11 को द्यु में माना है।[55] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् में अनेक देवताओं का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में 33 देवताओं का आधार और निवास–स्थान ब्रह्म को माना है।[56] ये सारे देवता उस ब्रह्मरूपी निधि की संसार में सदा रक्षा करते हैं।[57] इस प्रकार वेदों में देवों की संख्या 33 मानी गई हैं। उन 33 देवताओं से ही अन्य देवताओं की उत्पत्ति होती है।

एकदेवतावाद

ऋग्वेद में यद्यपि अनेक देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं फिर भी वैदिक मन्त्रों का यह बाह्य अर्थ है। वेदों का आन्तरिक सन्देश मूल रूप में एक ही परम शक्ति के स्वरूप को उद्घाटित करना है। ऋग्वेद में प्रत्येक देवता को सर्व शक्तिमान् माना गया है, इससे बहुदेवतावाद की पुष्टि होती है। इसके बाद विचारों में परिमार्जन हो जाने से सारे ही देवताओं का एक देवता में अन्तर्भाव मान लिया गया है;[58] परन्तु ऐसा करने पर किसी एक देवता को परम पद देना आवश्यक था, ऐसा करने से सारे ही अन्य देवता उसके विभिन्न गुण वाले रूप माने जा सकते थे। वैदिक ऋषियों ने भी एक ही चेतन शक्ति की उपासना की थी। यह चेतन शक्ति ही परमात्मा, ईश्वर या ब्रह्म है। विभिन्न देवता उसी महान् शक्ति की विविध शक्तियों और गुणों को प्रकट करते हैं। इन गुणों के लोकोत्तर होने के कारण देवता कहा गया। वास्तव में इन देवतावाचक शब्दों का अर्थ ब्रह्मपरक ही है। ईश्वर के एकत्व की और उसमें देवता रूप अनेकत्व की स्थापना ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में देखी जा सकती है–

> ''इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
> एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिष्वानमाहुः।।''[59]

उस परमात्मा के एक होते हुए भी उसको कई नामों से पुकारा जाता है– इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण गरुत्मान्, यम और मातरिश्वा। वास्तव में एक ही प्रमुख शक्ति है जो विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने के कारण अनेक नामों से जानी जाती है। इस प्रकार के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं– ''य एक इत् तमुष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः।।''[60] वह एक ही परमात्मा विद्वानों द्वारा अनेक नामों से स्मरण किया जाता है। वह धर्मरूप यज्ञों का स्वामी माना जाता है। यास्क ने भी सभी देवताओं की आत्मा को एक कहा है– ''महाभाग्याद् देवतायाः एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।।''[61] इन सभी देवताओं की आत्मा एक है और उसकी अनेक प्रकार से स्तुतियाँ की जाती हैं। ऋग्वेद में कहीं पर विश्वकर्मा, [62] कहीं पर पुरुष, [63] कहीं पर हिरण्यगर्भ [64] और कहीं पर प्रजापति[65] ही परम शक्ति के रूप में निरुपित है। इन देवताओं की स्तुतियाँ जिन सूक्तों में की गई है उन में एकेश्वरवाद की धारणा को प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में पुरुष परमात्मा के असंख्य, सिर, हाथ, पैर, आँख आदि बताए हैं और वह सारे ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित हैं।[66] इस सूक्त में परम पुरुष में सभी शक्तियों की कल्पना करके एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की गई है। नासदीय सूक्त में सृष्टि का वर्णन है। इस सूक्त के अनुसार पहले कुछ भी नहीं था, एकमात्र परमब्रह्म की ही सत्ता थी, उनके मन में सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई। उसने सृष्टि की रचना की, तत्पश्चात् देवता उत्पन्न हुए।[67] इसी प्रकार वाक् सूक्त है उसमें सारे जगत् की कारण भूता वाक् मानी गई है–

> ''अहं रुद्रेभिर्वसुभिष्चराम्यहमादित्यैरुत विष्वदेवैः।
> अहं मित्रोवरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमष्विनोभा।।''[68]

इस सूक्त में वाक् स्वयं को ब्रह्मरूप में प्रतिपादित करके अपनी महत्ता प्रकट करती है। हिरण्यगर्भ सूक्त में परमात्मा के हिरण्यगर्भ रूप की आदि उत्पत्ति सृष्टि बताई गई है तथा उसे सर्वाधिष्ठाता कहा गया है–

> ''हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
> स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां देवाय हविषा विधेम।।''[69]

एक स्थान पर कहा है कि विश्व में सारे घास और अन्न–मांस का भक्षी–जीव मैं ही हूँ और हृदय में स्थित ब्रह्म में ही हूँ।[70] एकेश्वरवाद का इससे स्पष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है? अथर्ववेद में भी वर्णन किया गया है कि परमात्मा एक ही है, उस परमात्मा के ही अनेक नाम हैं।[71] उस एक के ही इन्द्र, महेन्द्र, लोक, प्रजापति और विष्णु अनेक नाम हैं।[72]

वैदिक काल में प्रसिद्ध देवताओं के विविध रूपों एवं उनकी अद्भुत शक्तियों के वर्णन पर्याप्त पाए जाते हैं। इन्हीं देवताओं में एक चेतन अधिष्ठात्री शक्ति है। वही अप्रत्यक्ष शक्ति सृष्टि की कर्त्ता, नियन्ता और संहर्ता है तथा देवताओं को भी शक्ति प्रदान करता है। जिन प्राचीन ऋषियों ने वेदों की व्याख्या की है, उन्होंने उनमें एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने विभिन्न देवताओं को उसकी विभिन्न शक्तियाँ तथा गुण माना। एक देवता के आधार पर भिन्न–भिन्न कर्मानुसार, शक्त्यनुसार अनेक देवी–देवताओं की कल्पना की गई। अतः एक को ही अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। एक ही प्रमुख शक्ति है जो विभिन्न कार्यों को करने से अनेक नामों से संज्ञापित की जाती है– ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।''[73]

जिस प्रकार एक ही विस्तृत आकाश उपाधि भेद के कारण घटाकाश, पटाकाश, मठाकाश आदि अनेक नामों से जाना जाता है वैसे ही अज्ञान की उपाधि से एक ब्रह्म ही अनेक रूपों में परिवर्तित हो जाता है।

अथर्ववेद में देवों को चार भागों में विभक्त किया है:[74]

1. प्रयाज – विशेष यज्ञ करने वाले। शरीर में स्थित देवों की दृष्टि से बुद्धि और हृदय आदि प्रयाज हैं।

2. अनुयाज – अनुकूल विधि से यज्ञ करने वाले, बुद्धि आदि के अनुकूल कर्म करने वाले हाथ, पाँव आदि कर्मेन्द्रियाँ अनुयाज हैं।

3. हुतभाग – हुत का भोग करने वाले। शरीर में ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ ये भोगों को भोगती हैं।

4. अहुताद् – इनको अहुतभाग भी कहते हैं। हुत का भोग न करने वाले, शरीर में 5 प्राण, ये भोगों का उपभोग नहीं करते हैं। देवों के इस विभाजन के अतिरिक्त अथर्ववेद में द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष के आधार पर भी देवों का विभाजन किया गया है।

तीन लोकों के अनुरूप ही देवताओं के तीन वर्ग किए गए हैं– पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। इन तीनों लोकों में विभिन्न देवता अपना–अपना कार्य करते हैं। इनमें द्युस्थानीय सूर्य, अन्तरिक्ष स्थानीय वायु और पृथिवीस्थानीय अग्नि प्रमुख त्रिदेव हैं। आचार्य यास्क ने भी यही माना है– ''तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवी–स्थानः, वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः, सूर्यो द्युस्थानः।''[75] इन्हीं त्रिदेवों के आधार पर भिन्न–भिन्न कर्मानुसार और शक्त्यनुसार अनेक देवी–देवताओं की कल्पना की गई। स्थान के आधार पर प्रमुख देवों का वर्गीकरण किया जा रहा है–

पृथिवी स्थानीय देवता

पृथिवी प्राणी जगत् के लिए सब से निकटस्थ, प्रमुख तथा प्रथम स्थान वाली है। संभवतः यास्क एवं शौनक ने इसीलिए अपने–अपने वर्गीकरण में पृथिवी को प्रथम स्थान दिया है। दोनों ने अग्नि को पृथिवी स्थानीय देवताओं में प्रमुख माना है।[76] जिस देवता के लिए यज्ञ–कर्म में हवि दी जाती है अथवा किसी सूक्त में जिस की स्तुति की गई है, उसी को प्रधान देवता कहा जाता है। जिसकी स्तुति गौण रूप से हो वह प्रधान देवता नहीं होता।[77] अग्नि पृथिवी स्थानीय देवताओं में हविर्भाक् भी है और सूक्तभाक् भी। अतः यही प्रधान है अग्नि का पृथिवी लोक, प्रातः सवन नामक कर्म विशेष, वसन्त ऋतु, गायत्री छनद, त्रिवृत नाम स्तोम और रथन्तर नामक साम से विशेष सम्बन्ध है।[78] पृथिवी स्थानीय देवताओं में जितने भी देवता पठित हैं उन सबका प्रतिनिधि अग्नि देवता ही है। देवताओं को हवि पहुँचाना तथा यज्ञवेदी पर लाना अग्नि के ये दो प्रधान कर्म हैं।[79] ऋग्वेद के एक मन्त्र में सभी देवों से प्रार्थना की गई है कि वह अग्नि देव को यज्ञ में आने के लिए प्रेरित करें– 'हे देवो! कर्मों से सब को व्याप्त करने वाले, लपटों के कारण चंचल तथा

घोड़े की तरह वेगवान् इस अग्नि को हमारे इस यज्ञ–कर्म में आने के लिए प्रेरणा दो।'[80] चमकना, प्रकाश करना आदि भी इसी का कार्य है। अग्नि वैदिक युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध देवों में से एक है। तैत्तिरीय–ब्राह्मण में भी सभी तेंतीस देवताओं को तीन भागों में विभक्त किया है और पृथ्वी स्थानीय देवों में आठ वसु देवता बतलाए हैं।[81] यहाँ भी वसुओं के वर्ग के प्रमुख देवता अग्नि को ही माना गया है।[82] रामायण में आठ वसुओं का वर्णन आता है ये अदिति के पुत्र बतलाए गए हैं।[83] पृथिवी स्थानीय देवता अग्नि, यम, सोम, विश्वेदेव, पृथिवी और बृहस्पति आदि हैं।[84]

अन्तरिक्ष स्थानीय देवता

ऐसी प्राकृतिक शक्तियाँ जिन का सम्बन्ध अन्तरिक्ष या मध्यम लोक से है, उन्हें अन्तरिक्ष स्थानीय देवता कहा गया है। 'वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्ष–स्थानः' यास्क के मतानुसार– वायु और इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में प्रमुख हैं।[85] ऐतरेय–ब्राह्मण ग्यारह रुद्रों को अन्तरिक्ष स्थानीय देवता मानता है।[86] तैत्तिरीय–ब्राह्मण में भी रुद्रों का नेतृत्व करने वाले इन्द्र ही है।[87] अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में रुद्रों को अपने वर्ग के ज्येष्ठ तथा अन्तरिक्ष का अधिपति एवं नियन्ता माना है और ये देवता ग्रीष्म ऋतु का नियमन करने वाले हैं।[88] अन्तरिक्ष की उपयोगिता वर्षा कराने के कारण है, अतः जो तत्त्व वर्षा कराने में जितना सहायक है वही अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में प्रमुख है। शौनक ने बृहद्–देवता में अधिकतर स्थानों पर अन्तरिक्ष–स्थानीय देवताओं में इन्द्र को ही प्रमुख देवता माना है।[89] ऋग्वेद में भी वायु की अपेक्षा इन्द्र प्रधान देवता के रूप में स्तुत दिखाई देते हैं। ऋग्वेद में इन्द्र के लिए 250 सूक्त हैं जिनमें उनकी स्तुति की गई है। रामायण में भी ग्यारह रुद्रों का वर्णन आया है।[90] ये ग्यारह रुद्र इन्द्र के सहायक देव बताए गए हैं।[91] जिससे स्पष्ट होता है कि रामायण में भी इन्द्र को अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में प्रमुख देवता माना गया है। अन्तरिक्ष स्थानीय देवता इन्द्र, मरुद्गण, वायु, रुद्र, वाक्, पर्जन्य, मातरिश्वा आदि हैं।[92]

द्युस्थानीय देवता

लोक के आधार पर तृतीय लोक द्युलोक हैं। द्युस्थानीय देवताओं में सूर्य को प्रमुख देवता माना है।[93] बृहद् देवता में सूर्य को ही स्थावर जंगमात्मक, संसार का उत्पादक, पालक और संहारक माना है।[94] सूर्य के बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। सूर्य का प्रकाश एवं गर्मी से ही जीवन सम्भव है, अन्यथा कोई भी जीव संसार में पैदा न होता, अतः सूर्य को द्युस्थानीय देवताओं का प्रतिनिधि मानना सार्थक है।

ऐतरेय–ब्राह्मण ने बारह आदित्यों को द्युस्थानीय देवताओं में वर्णित किया है।[95] तैत्तिरीय–ब्राह्मण में भी बारह आदित्यों का वर्णन किया गया है इनके वर्ग के ज्येष्ठ देवता वरुण को बताया गया है।[96] ये महःलोक (द्युलोक) के अधिपति हैं तथा बारह आदित्यगण वर्षा ऋतु का नियमन करते हैं। रामायण में भी बारह आदित्य बताए गए हैं इनकी गणना तेंतीस देवताओं में की जाती है।[97] द्युस्थानीय देवताओं में आदित्यगण, सूर्य, सविता, पूषा, मित्र, वरुण, अश्विनौ, विष्णु और चन्द्रमा आदि का वर्णन किया जाता है।[98]

उक्त तीनों वर्गों के अतिरिक्त युग्म देवताओं और देवतागण के अन्तर्गत मित्रावरुणौ, मरुद्गण, आदित्यगण, विश्वेदेव, अश्विनौ, वसुगण और रुद्रगण का वर्णन किया गया है। इन देवताओं के साथ–साथ अन्य देवताओं में भावात्मक देवताओं, देवियों और पुरुष, कार्तिकेय, कुबेर तथा कामदेवादि देवताओं का भी उल्लेख किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिवनारायण शास्त्री, निरुक्त–मीमांसा, पृष्ठ 258
2. ऋग्वेद, 7.33.11
3. ऋक्सूक्त–संग्रह, भूमिका, पृष्ठ 11
4. डॉ. सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ 258
5. शतपथ–ब्राह्मण, 11.16.7
6. वही, 14.3.2.8
7. षड्विंश–ब्राह्मण, 4.1 : दिवादेवानसृजत् नक्तमसुरान्। यद् दिवा देवानराजत तद् देवानां देवत्वम्
8. शतपथ–ब्राह्मण, 11.1.6.7
9. अथर्ववेद, 10.7.25 : बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परिजज्ञिरे
10. ऋग्वेद, 10.129.6 : अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव
11. वही, 10.63.2 : ये स्थ जाता अदितेरद..... यस्परि ये पृथिव्यास्तेम इह श्रुता हवम्
12. वही, 1.113.19 : माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि
13. वही, 2.26.3 : देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना
14. वही, 9.87.2
15. अथर्ववेद, 1.30.2
16. वाल्मीकि रामायण, 3.14.14
17. वही, 3.14.9–17
18. वही, 1.45.37–38 : दितेः पुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम्। अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्।। असुरास्तेन दैतेया : सुरास्तेनादितेः सुताः। हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणीग्रहणात् सुराः।।
19. वही, 1.45.41
20. वही, 2.3.28 : लब्ध्वामृतमिवामरः
21. वही, 1.45.45
22. ऋग्वेद, 10.43.5
23. ऋग्वेद भाष्य, भूमिका, पृष्ठ 59
24. वसिष्ठ के अग्निसूक्त, अध्याय 1, पृष्ठ 13
25. निरुक्त, 7.4
26. रामायण एवं महाभारत का शाब्दिक विवेचन, अध्याय 3, पृष्ठ 46
27. तैत्तिरीय–उपनिषद्, 11
28. शतपथ–ब्राह्मण, 3.7.3.10
29. यजुर्वेद, 40.4
30. शतपथ ब्राह्मण, 7.5.1.21
31. रामायण एवं महाभारत का शाब्दिक विवेचन, अध्याय 3, पृष्ठ 45
32. वही, अध्याय 3, पृष्ठ 45
33. सूर्यकान्त, वैदिक धर्म एवं दर्शन, पृष्ठ 95
34. वेदान्तसार, भूमिका, पृष्ठ 4
35. वेदान्तसार, श्लोक 1
36. ऐतरेय–ब्राह्मण, 1.2.1
37. छान्दोग्य–ब्राह्मण, 1011.1.9
38. ऋग्वेद, 1.164.20
39. वही, 1.22.20
40. अथर्ववेद, 11.19.10
41. वही, 18.3.41; 19.19.10
42. वही, 1.30.3
43. वही, 13.1.35
44. वही, 2.34.2
45. वही, 18.3.24
46. निरुक्त, 7.2
47. वही, 7.2
48. ऋग्वेद, 1.139.11
49. वही, 10.55.3
50. वही, 3.9.9
51. अथर्ववेद, 11.8.3
52. वही, 11.8.4
53. वही, 11.5.2
54. ऐतरेय–ब्राह्मण, 2.2.8

55. तैत्तिरीय–संहिता, 1.4.10.1
56. अथर्ववेद, 10.7.13
57. वही, 10.7.23
58. ऋग्वेद, 3.55.3
59. वही, 6.45.16
60. निरुक्त, 7.2
61. ऋग्वेद, 10.81.3
62. वही, 10.90.2
63. वही, 10.121.2
64. वही, 10.184.1
65. वही, 10.90.2
66. वही, 10.129.7
67. वही, 10.125.1
68. वही, 10.121.1
69. वही, 10.27.9
70. अथर्ववेद, 2.1.3
71. वही, 17.1.18
72. ऋग्वेद, 1.164.46
73. अथर्ववेद, 1.30.4
74. निरुक्त, 7.2
75. बृहद्–देवता, 1.69; निरुक्त, 7.5
76. बृहद्–देवता, 1.78
77. बृहद्–देवता, 1.115
78. निरुक्त, 7.5
79. ऋग्वेद, 10.188.1
80. तैत्तिरीय–ब्राह्मण, 3.2.3.6; 3.11.2.4
81. वही, 3.7.4.29–30
82. वाल्मीकि रामायण, 3.14.14; 7.28.27
83. सूर्यकान्त, वैदिक धर्म एवं दर्शन, 2.10
84. निरुक्त, 7.2
85. ऐतरेय–ब्राह्मण, 3.22
86. तैत्तिरीय–ब्राह्मण, 3.7.4.29–30
87. तैत्तिरीय–ब्राह्मण, 3.8.18.68–69
88. बृहद्–देवता, 1.69, 121; 2.7.31
89. वाल्मीकि रामायण, 3.14.14; 7.28.27
90. वही, 7.27.3–5; 7.28.26–28
91. सूर्यकान्त, वैदिक धर्म एवं दर्शन, 2.9
92. निरुक्त, 7.2; बृहद्–देवता, 2.69
93. बृहद्–देवता, 1.61–62
94. ऐतरेय–ब्राह्मण, 3.7.4.29–30
95. तैत्तिरीय–ब्राह्मण, 3.7.4.29–30
96. वही, 3.8.18.68–69; 2.6.19.1–3
97. वाल्मीकि रामायण, 3.14.14
98. सूर्यकान्त, वैदिक धर्म एवं दर्शन, 2.10